"सामाजिक न्याय में पंचायती राज संस्थाओं की प्रषासनिक भूमिका"

Ph-D. शोधार्थी, राजीव चौधरी

Abstract :

- ❖ परिचय
- ❖ सिन्धु घाटी सभ्यता काल प्रषासन
- ❖ ऋग्वैदिक काल
- ❖ उत्तर वैदिक काल
- ❖ महाकाव्य काल
- ❖ बौद्धकालीन राज्य तथा प्रषासनिक चिन्तन
- ❖ न्याय
- ❖ मौर्य शासन अथवा कौटिल्य कालीन प्रषासन
- ❖ गुप्त प्रषासन
- ❖ मुगलकालीन प्रषासन
- ❖ मुगल राज्य में स्थानीय शासन
- ❖ ब्रिटिष काल में प्रषासन का विकास
- ❖ न्याय प्रषासन
- ❖ स्वातन्त्रोयोत्तर प्रषासन
- ❖ भारत में वर्ण जाति एवं दलित
- ❖ पंचायती राज संस्थाओं का गठन, कार्य तथा प्रचलन
- ❖ ग्राम स्तर
- ❖ ग्राम सभा
- ❖ ग्राम पंचायत
- ❖ प्रषासनिक कार्मिक
- ❖ न्याय पंचायतें/पंचायतों के न्यायिक कार्य
- ❖ बिहार
- ❖ निष्कर्ष

परिचय –

भारत का वर्त्तमान प्रषासन अतीतकालीन प्रषासनिक व्यवस्थाओं एवं प्रागैतिहासिक शासनों का विकसित प्रतिरूप है। इसका प्राचीनतम रूप हमें सिन्धु घाटी सभ्यता काल में देखने को मिलता है जहाँ से उसने निरन्तर प्रगति करते हुए युगों के अनेक उतार–चढ़ावों के थपेड़ों को सहन करते हुए आधुनिकता के परिवेष को प्राप्त किया है। अपने वर्त्तमान रूप में यह ब्रिटिष शासन के विकास से पूर्णरूपेण प्रभावित है तथापित भारत का प्राचीन वैदिक युग और हिन्दू राजनीतिक और प्रषासनिक दृष्टि से उन्नत माना जाता था। मोहनजोदड़ो एवं

शोधकर्त्ता – राजीव चौधरी, लोक प्रषासन विभाग, मगध विष्वविद्यालय बोध–गया, बिहार (भारत)
शोध निर्देषक – डॉ० रामलखन प्रसाद, सेवानिवृत एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर–राजनीति विज्ञान, विभाग, मगध विष्वविद्यालय, बोध–गया, गया, बिहार (भारत)

हड़पा के अवषेषों से आभास मिलता है कि इस युग में विभिन्न समुदायों की अपेक्षा एक एकीकृत साम्राज्य था। आर्यों ने अपना राजनीतिक संगठन एवं शासन प्रणाली वर्णों के अनुसार बनायी जो राजतंत्र में परिणत हुई। भारतीय प्रषासन का प्रागैतिहासिक विवरण यद्यपि अधिक निष्चित नहीं है , और उसे अतीत के गौरव की एक उल्लेखनीय झाँकी अवष्यक माना जाता है।

भारतीय लोक प्रषासन के विकास की लम्बी यात्रा में जहाँ अनेक साम्राज्य बने और बिगड़े वहाँ इसकी दो विषेषताएँ निरन्तर कायम रहीं है। प्रथम प्रषासनिक संगठन की संरचना में प्रारंभिक इकाई के रूप में ग्राम का महत्व और द्वितीय, प्रषासनिक संगठन में केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की प्रवृतियों का सामंजस्य आज भी उक्त दोनों विषेषताएं भारतीय लोक प्रषासन में कायम है। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय लोक प्रषासन के विकास सुविधा की दृष्टि से विभिन्न भागों में विभाजित कर वर्णन किया जा सकता है।

❖ **सिन्धु घाटी सभ्यता काल प्रषासन** :–

सिन्धु घाटी सभ्यता काल प्रषासन (2250 ई0 पूर्व से 1750 ई0 पूर्व तक) का केवल अनुमान लगाया जा सकता है। लिखित साक्ष्यों के अभाव में सिन्धु सभ्यताकालीन राजनीतिक एवं प्रषासनिक स्थिति का निर्धारण अत्यन्त कठिन है। हीलर तथा पिगट का अभिमत है कि मोहनजोदड़ों और हड़पा साम्राज्य अच्छे ढ़ंग से शासित साम्राज्य थे। सिन्धु घाटी की सभ्यता में सुनियोजित सड़कों तथा नालियों की व्यवस्था थी। इससे यह प्रतीत होता है कि नगरों में नगरपालिकाएं थी, जो नगरों की समुचित व्यवस्था करती थीं। पिगट के अनुसार योजनाबद्ध निमार्ण कार्य को देखते हुए अनुमान किया जाता है कि नगरों में नगरपालिका जैसी कोई संस्था आवष्य रही होगी। सिन्धु घाटी सभ्यता के सम्पूर्ण क्षेत्र में एक हीं प्रकार के भवनों का निर्माण होता था, एक हीं प्रकार की मूर्तियाँ बनायी जाती थी, एक हीं माप–तौल थी, एक ही लिपि का प्रचलन था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्पूर्ण सिन्धु प्रदेष एक ही विषाल साम्राज्य में संगठित था। इस देष में एक संगठन, एक व्यवस्था तथा एक शासन की सता थी। हण्टर का विचार है कि यहां शासन व्यवसथा राजतंत्रात्मक नहीं वरन लोकतांत्रात्मक थी जबकि मैके के अनुसार मोहनजोदड़ों में एक प्रतिनिधि शासक प्रषासन करता था। व्हीलर का विचार है कि मोहनजोदड़ों की शासन व्यवस्था धर्मगुरूओं और पुरोहितों के हाथों में केन्द्रित थी जो जनप्रतिनिधियों के रूप में प्रषासनिक कार्य करते थे। (भारतीय प्रषासन, पृ:1)

❖ **ऋग्वैदिक काल** :–

ऋग्वैदिकालीन राजनीतिक व्यवसथा की सबसे छोटी इकाई 'कुटुम्ब' थी। परिवार का सबसे अधिक आयुवाला पुरूष कुटुम्ब के समस्त सदस्यों द्वारा प्रधान की आज्ञा मानना परम आवष्यक था। अनेक कुटुम्बों के समुह को ग्राम कहा जाता था। ग्राम का अधिकारी होता था जिसे 'ग्रामणी' कहते थे। 'ग्रामणी' का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था क्योंकि वह 'ग्राम' का एक मात्र प्रषासनिक अधिकारी होता था। अनेक ग्रामों के समूह को 'विष' कहते थे, जिसके अधिकारी को 'विषपति' कहा जाता था। अनेक 'विष' मिलकर 'जन' की रचनना करते थे। जन के प्रधान अधिकारी को 'गोप' कहते थे। गोप प्रायः राजा ही हुआ करते थे। गोप का तत्कालीन प्रषासनिक व्यवस्था में अत्यधिक महत्वपूर्ण पद था। ऋग्वेद काल में शासन व्यवसथा प्रमुखतया राजतंन्त्रात्मक (Monarchial) थी, जिसका अध्यक्ष 'राजा' होता था। ऋग्वेदक में गणों (Republics) का भी उल्लेख है, किन्तु राजतन्त्रों की संख्या अधिक थी। ऋग्वेद में कानून के लिए 'धर्मन्' शब्द का प्रयोग मिलता है। न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा हीं होता था। उसकी सहायतार्थ पुरोहित होता था। ग्राम के न्यायाधीष को 'ग्राम्यवादिन' कहते थे। अपराधों के लिये कठोर दण्ड दिया जाता था। ऋण न चुकाने पर ऋणी व्यक्ति को जिस व्यक्ति से ऋण लिया

था, उसकी दासता करनी पड़ती थी। न्याय की दिव्य प्रणाली (Trial by ordeal) अत्यधिक प्रचलित थी जिसमें गरम कुल्हाड़ी, अग्नि तथा जल का प्रयोग किया जाता था।

❖ **उत्तर–वैदिक काल** :–

ऋग्वैदिक युग के पष्चात के काल को उत्तर–वैदिक युग कहते हैं। इस युग की प्रमुख विषेषता शक्तिषाली राजाओं का उदय होना था। इस युग में यद्यपि राजा का पद पैतृक होता था, परन्तु कभी–कभी उसका निर्वाचन भी किया जाता था। उत्तर–वैदिक काल में, ऋग्वैदिक युग की अपेक्षा राजा की सहायतार्थ प्रषासनिक पदाधिकारियों की संख्या में वृद्धि हुई। राज्यों के बढ़ते हुए परिणाम को देखते हुए ऐसा होना स्वाभाविक ही था। प्रषासनिक व्यवसथा की सुविधा के लिए राज्य में अनेक विभागों की रचना की गई थी जिनमें प्रमुख वित्त विभाग, निरीक्षण विभाग, आरक्षण एवं सेना विभाग, स्थानीय शासन विभाग थे। राजा मंत्रियों की सहायता से प्रषासन करता था। मंत्री का पद परम्पररा एवं जनमत पर आधारित था। इन मंत्रियों को उत्तरवैदिक काल में 'रत्निन' कहते थे। राजा की स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुषता पर प्रतिबंध लगाने वाली संस्थाएं 'सभा' एवं 'समिति' थी। उत्तर–वैदिक न्याय व्यवस्था का सर्वोच्य अधिकारी राजा होता था तथा उसकी सहायतार्थ अन्य अधिकारी भी होते थे। न्यायाधीष को 'स्थपति' कहा जाता था। गाँव में छोटे–छोटे अपराधों का ग्राम्यवादिन नामक अधिकारी निर्णय करता था।

❖ **महाकाव्य काल** :–

वैदिक काल की तुलना में राज्यों के स्वरूप में महाकाव्य काल तक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो चुका था। वैदिकयुगीन छोटे–छोटे राज्यों के स्थान पर विषाल साम्राज्यों की स्थापना हो चुकी थी, जिनके शासकों को 'सम्राट' कहा जाता था। महाकाव्य काल में कुछ गणतंत्रों का अस्तित्व भी था, परन्तु प्रमुखतया राजतंत्र ही विद्यमान थे। राज्य का सर्वोच्य अधिकारी 'राजा' होता था। राजा प्रायः निरंकुष होने का प्रयास नहीं करते थे तथा लोक–कल्याण के कार्य व प्रजा की रक्षा करना उनके प्रमुख कर्त्तव्य थे। सम्राट को प्रषासन में सहायता देने के लिए दो संस्थाएं क्रमषः मन्त्रिपरिषद व सभा होती थी। मंत्रिपरिषद में लगभग 37 मंत्री होते थे जो प्रत्येक वर्ण में चुने जाते थे। सभा में 18 सदस्य होते थे जो विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे। प्रषासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य को विभिन्न इकाईयों में विभाजित किया गया था। सबसे छोटी इकाई ग्राम थी जिसके ऊपर दषग्राम, विषतिग्राम, शतग्राम, सहस्त्रग्राम तथा राज्य थे। इन इकाइयों के अधिकारियों को क्रमषः ग्रामिक, विषतिय, शतग्रामी, अधिपति व राजा कहते थे। इन पदाधिकारियों का कर्त्तव्य लगान वसूल करना, 'अपराधियों को दण्डित करना व अपने क्षेत्र में शांति बनाए रखना था। आय का प्रमुख साधन प्रजा से वसूल किए जाने वाले कर थे।

❖ **बौद्धकालीन राज्य तथा प्रषासनिक चिन्तन** :–

बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व एवं उनके समय में महाजपदों के अस्तित्व का पता चलता है। महात्मा बुद्ध के समय अनेक गणतंत्रात्क राज्य थे जैसे – शाक्य, कोकिल, मौर्य, मल्ल, बुलि, लिच्छवि चार राजतंत्र भी थे जो साम्राज्य विस्तार की भावना से प्रेरित होकर निरन्तर अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए संघर्षरत थे। ये राजतंत्र थे मगध, अवन्ति, वत्स और कौषल।

बौद्ध साहित्य में बौद्धकालीन गणतंत्रों का वर्णन है। बौद्ध ग्रन्थों में बौद्ध संघों की प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था का विस्तृत विवरण है। बौद्धकालीन गणराज्यों में प्रषासन की वास्तविक शक्ति सभा में निहित होती थी जो सभागार में होती थी तथा छोटे बड़ी (वही : पृः 2) समान रूप से उसके सदस्य होते थे तथा समय–समय पर मिलकर राज्य की समस्याओं का समाधान करते थे। राज्य एक अध्यक्ष भी होता था जिससे राजा कहते थे, जिसको चुनाव के द्वारा एक निष्चित अवधि के लिए नियुक्त किया जाता था। डॉ0 जायसवाल के अनुसार शासनाधिकार 7.

707 नागरिकों को प्राप्त था तथा वे प्रधान, उपप्रधान, सेनापति एवं कोषाध्यक्ष बनते थे। सामन्तवादी प्रथा प्रचलित थी। प्रत्येक राजा एक सामन्त तथा जिसके पास कुछ जमींदारी थी जिसके प्रबंध के लिए वह सेनापति एवं भाण्डागारिक रखता था। इस प्रकार राज्य सामन्तों में बंटा हुआा था तथा प्रत्येक सामन्त ही सभा का सदस्य होता था जिसका अध्यक्ष ही वास्तविक शासक होता था। प्रो0 डेविडस के अनुसार गणराज्यों में शासन व्यवस्था और न्याय के कार्य सभा के द्वारा ही सम्पन्न होते थे डॉ0 मजूमदार के अनुसार, गणराज्यों की कार्य प्रणाली निम्न प्रकार थी – (i) सभा में प्रस्ताव रखने के लिए निर्षिचित नियम बना दिए गए थे। प्रस्ताव साधारणतः तीन बार दोहराया जाता था और विरोध न होने पर स्वीकृत मान लिया जाता था। विरोध होने पर बहुमत का सहारा लिया जाता था। (ii) उलझी हुई समस्याएं विषिष्ट समितियों को सौंप दी जाती थी। (iii) पूरक के नियम बने हुए थे। अनुपस्थित मताधिकारी का मत लेने के भी नियम थे। डॉ० अल्टेकर के अनुसार शाकय गणराज्य में ग्राम की अपनी भी सभाएं होती थी जिनका अधिवेषन ग्राम के संथागार में होता था। इनमें स्थानीय विषयों पर विचार किया जाता था। इस सभा में गाँव के प्रत्येक परिवार को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता था। डॉ० डी० डी० शुकल ने इन गणतंत्रोंकी शासन व्यवस्था को वर्णन करते हुए लिखा है, '' बौद्धकालीन गणराज्यों में भी सभा का महत्व कम नहीं था। सभा के कार्य बहुत से होते थे। इस काल के राज्यों में महामाल्य 'वोहारिक, सुत्रधार, अहुकुल, सेनापति, उपराजा आदि पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है और सम्भवतः ये पदाधिकारी न्याय एवं प्रषासनिक दोनों प्रकार के कार्य करते रहेंगे। इस काल के गणराज्यों में ग्राम की व्यवस्था ग्राम सभाओं द्वारा होती थी''।

❖ **न्याय** :–

न्यायकी इन गणतंत्रों में पूर्ण व्यवस्था थी। इस काल में न्याय का कार्य सामाजिक एवं आर्थिक संगठनों में स्थापित कर दिया गया था। महापरिनिष्वान सूत्र की बुद्धघोष द्वारा की गई टीका में बज्जियों की न्याय व्यवस्था पर प्रकाष पड़ता है। इसके अनुसार उस समय इस गणतंत्र में सात न्ययायलय में निम्नप्रकार थे : (1) विनिच्चयमहामात, (2) वोहारिक, (3) सूत्रधर, (4) अट्टकुल (5) सेनापति, (6) उपराजा, (7) राजा। इस ग्रन्थ के विवरण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन न्यायवयवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक अपराधी पर क्रमानुसार सातो न्यायालयों में विचार किया जाता था। प्रत्येक न्यायालय को अधिकार था कि कथित अपराधी को निर्दोष प्रमाणित होने पर उसे मुक्त कर दें, परन्तु अपराधी पाए जाने पर उसको अपने उच्चतर न्यायालयों में भेज दे। इस प्रकार अपराधियों को दण्ड राजा के द्वारा हीं दिया जाता था जो न्याय का सर्वोच्य अधिकारी होता था।

गौतम बुद्ध से जब पूछा गया कि गणराज्य की सफलता के लिए किन गुणों की आवष्यकता है अथवा कोई गणराज्य क्यों सफल होता है तो उन्होंने इसके लिए उत्तरदायी सात कारणों को उल्लेख किया – (1) जल्दी–जल्दी सभाएं करना तथा उनमें मताधिकार प्राप्त व्यक्तियों का अधिक–से–अधिक भाग लेना (2) राज्य के कार्यों को एकमत होकर सहयोगपूवर्क संचालित करना (3) कानून का भी उल्लंघन न करना तथा समाज–विरोधी कानूनों की रचना न करना (4) वृद्ध व्यक्तियों के विचारों को महत्व देना तथा उनका प्रर्याप्त सम्मान करना (5) कन्याओं एवं स्त्रियों के साथ बलात्कार न करना (6) अपने धर्म में दृढ़ विष्वास रखना तथा (7) कर्तव्य–परायण रहना। तत्कालीन वज्जियों के गणराज्य में ये सभी गुण पाए जाते थे। कुछ भी हो बुद्ध के युग में राज्यों पर वंषगत राजा नहीं बल्कि गणसभाओं के प्रति उत्तरदायी व्यक्ति शासन करते थे। अतः प्राचीन गणराज्यों में रहने वाले लोगों का राजनीतिक सत्ता में बराबरी का हिस्सा भले न रहा हो, परन्तु भारत में गणतंत्र की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना बुद्ध का युग।

❖ **मौर्य शासन अथवा कौटिल्य कालीन प्रषासन** :–

मौर्यकाल में भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की तथा एक विषाल साम्राज्य पर मौर्य शासकों ने शासन किया। इस विषाल साम्राज्य की प्रषासनिक व्यवस्था पर प्रकाष डालने वाले अनेक एतिहासिक स्त्रोत उपलब्ध हैं जिनसे अज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य न केवल एक महान विजेता वरन एक योग्य प्रषासक भी था। कौटिल्य का अर्थषास्त्र, मैगस्थनीज की इण्डिका, अषोक के षिलालेख व अनेक यूनानी रचनाओं से मौर्य शासन प्रणाली के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरू, मित्र व प्रधानमंत्री चाणक्य की सहायता से जिस शासन प्रणाली को प्रारम्भ किया, उल्लेखनीय है कि लगभग दो हजार वर्षों के उपरान्त अंग्रेजों ने भी लगभग उसी शासन प्रणाली को भारत में प्रतिस्थापित किया। (वही पृ : 3) प्रत्येक प्रान्त अनेक मण्डलों में विभक्त होता था जिनमें महामात्य शासन करते थे। प्रत्येक मण्डल पुनः विभिन्न जनपदों में विभक्त होता था जिसका प्रधान अधिकारी समाहर्ता होताा था। प्रत्येक जनपद प्रषासन की सुविधा के लिए पुनः अनेक नगरों में विभक्त होता था। प्रत्येक जनपद की सबसे छोटी प्रषासनिक इकाई ग्राम होती थी। 10 ग्रामों के समूह को संग्रहण 20 ग्रामों के समूह को खर्वटिक, 440 ग्रामों के समूह को द्रोणमुख व 800 ग्रामों के समूह को स्थानीय कहते थे।

प्रषासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। जिसका अधिकारी ग्रामिक कहलाता था। ग्रामिक ग्राम सभा का भी प्रधान होता था तथा उसका निर्वाचन गाँववासियों के द्वारा किया जाता था। गांव एक प्रकार से छोटे–छोटे अर्द्धस्वायत प्रजातन्त्र थे। मौर्यकालीन नगर प्रषासन अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं उच्चकोटि का था। नगर का प्रधान अधिकारी 'नागरिक' होता था जिसके अधीन सैनिक व गोप आदि अधिकारी होते थे । (वही, पृ:4)

मौर्यकाल में न्याय व्यवस्था अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं उच्च कोटि की थी। न्याय के लिए अनेक न्यायालय होते थे। सबसे ऊपर राजा का न्यायालय होता था जिसका निर्णय अन्तिम एवं सर्वमान्य होता था। न्याय प्रषासन के अन्तर्गत सबसे छोटा न्यायालय ग्राम का होता था जिसमें 'ग्रामीक' ग्राम सभा की सहायता से निर्णय देता था। ग्राम न्यायालय से ऊपर संग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय व जनपद के न्यायालय होते थे। जनपद न्यायालय के उपर पाटलिपुत्र स्थित केन्द्रीय न्यायालय होते थे, जिसके उपर राजा का न्यायालय होताा था। ग्राम एवं राजा के न्यायालय के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालय दो प्रकार के होते थे : धर्मस्थीय व कंटकषोधन न्यायालय। (भारतीय प्रषासन पृ :5)

❖ **गुप्त प्रषासन** :–

गुप्तकालीन शासन व्यवस्था पर समकालीन अभिलेखों व साहित्यिक स्त्रोतों से विस्तृत प्रकाष पड़ता है। गुप्त राजाओं ने अपने पूर्वगामी शासकों के शासन प्रबंध को अपनाते हुए उसमें कुछ आवष्यक परिवर्तन कर समयानुकूल बनाया। गुप्तकाल में ग्राम प्रषासन में अनेक नये आयाम जुड़ गए। मौर्यकाल में गोप नामक राज्य कर्मचारी गांव की व्यवस्था की देखरेख बड़ी सजगता से करता था । अब राज्य की ओर से ऐसा कुछ नहीं किया जाता था और न ही गृहस्थियों का पंजीयन हीं होता था। गांव के मामलों का प्रबंध महतरों अर्थात बड़े बुजुर्गों की सहायता से ग्राम प्रधान करता था। (वही पृ:6)

❖ **राजपूतकालीन प्रषासन** :–

राजपूत काल में राजा शासन का सर्वेसर्वा होता था। राजा का पद वंष परम्परागत होता था। कानून न्याय और शासन तीनों ही दृष्टि से राजा श्रेष्ट होता था। राजा को परामर्ष देने के लिए एक मंत्रिमंडल होता था। मंत्री अपने–अपने विभागों को प्रबंध करते थे। प्रत्येक राज्य में एक पुरोहित होता था, जिसका पद मंत्री के समान होता

था। अनेक उच्च श्रेणी के अधिकारी भी होते थे। यथा प्रतिहा, सेनाधिपति, आक्षपाठलिक, भिषक, नैमितिक और कृत। ये सब अधिकारी राजधानी में रहते थे और राजा के साथ इनका सीधा सम्बन्ध था।

ग्राम प्रषासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम का प्रबंध ग्राम सभाओं के हाथ में होताा था। प्रत्येक ग्राम की एक सभा होती थी जो अपने क्षेत्र में शासन का सब कार्य संभालती थी। स्थान और काल भेद से ग्राम सभाओं के संगठन भिन्न–भिन्न थे। ग्राम सभा के अधिवेषन की अध्यक्षता ग्रामीणी नामक कर्मचारी करता था। शासन की सुविधा हेतु अनेक समितियों का निर्माण किया जाता था तथा उन्हें विविध प्रकार के कार्य सौंपे जाते थे। ग्राम क्षेत्र के झगड़े निपटाना, बाजार का प्रबंध करना, कर वसूल करना, जलाषयों, खेतों, चारागाहों आदि की देखभाल करना, मार्गों को ठीक हालात में रखना आदि कार्य ग्राम सभाओं के कार्यक्षेत्र में दिए हुए थे। शत्रुओं और डाकुओं से गाँव की रक्षा करना ग्राम संस्थाओं का कार्य था। (वही पृ:7)

❖ **मुगलकालीन प्रषासन** :–

भारतीय शासन की बागडोर मुगल सम्राटों के हाथ में आने के बाद उन्होंने अपनी सुविधा, प्रज्ञा और आकांक्षाओं के अनुरूप प्रषासनिक व्यवस्था में भी अनेक परिवर्तन किए। विषेष रूप से अकबर (1556–1605), जहांगीर (1605–1627) तथा शाहजहाँ (1627–1658) ने अपने काल में अनेक नवीन परिवर्तन किए। इन सब में सम्राट अकबर में विलक्षण एवं उच्च प्रषासनिक क्षमता थी जिसका उसने अनेक नवीन प्रषासनिक कदमों की शुरूआत अथवा असामयिक परम्पराओं का अन्त करके परिचय भी दिया। मुगल काल में प्रषासनिक क्षेत्र में सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृति बढ़ी जिसमें शासक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न एवं शक्ति का एकमात्र पुंज अथवा स्त्रोत हो गया। प्रषासन की समस्त गतिविधियों पर वही नियंत्रण करता था तथा इस हेतु व अपने कर्मचारियों पर सावधानीपूर्वक निगरानी भी रखता था। (वही पृ: 9)

❖ **मुगल राज्य में स्थानीय षासन** :–

शासन की सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक प्रान्त तीन भागों में विभक्त था : (1) सरकार (2) परगना तथा (3) ग्राम। प्रत्येक प्रान्त अनेक सरकारों या जिलों में विभक्त था। प्रत्येक सरकार का सबसे बड़ा अधिकारी 'फौजदार' होता था। सरकार में वह सुबेदार का प्रतिनिधि था। साधारणतया फौजदार एक उच्च मनसबदार होता था। 'सरकार' में शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना फौजदार का प्रमुख कर्त्तव्य था। सरकार में राजस्व का एक प्रमुख अधिकारी अमलगुजार होता था। गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई होती थी। गाँव का प्रधान अधिकारी 'मुकदम' कहलाता था जो गांव का मुखिया होता था। इसका प्रमुख कार्य लगान वसूल करना गांव में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना तथा सरकरी कर्मचारियों की मदद करना था। गाँव का दूसरा प्रमुख अधिकारी 'पटवारी' कहलाता था। यह भूमि के लगान से संबंधित रजिस्टर रखता था। अबुल फजल ने लिखा है कि वह किसानों से संबंधित व्यक्ति था तथा किसानों के व्यक्तिगत लगान, लेन–देन का हिसाब रखना उसके प्रमुख कार्य थे। (वही, पृ:11)

❖ **ब्रिटिष काल में प्रषासन का विकास** :–

भारत में ब्रिटिष प्रषासन का बीजरूप में प्रारम्भ 1600 ई0 में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना के साथ हुआ। सन् 1755 तक एक व्यापारिक संस्था के रूप में ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपना अस्तित्व भली–भाँति स्थापित कर चुकी थी। सन् 1757 ई0 में प्लासी के युद्ध से भारत में ब्रिटिष प्रभुत्व की नींव पड़ी। सन् 1772 ई0 से 1858 ई0 तक का युग ऐसा रहा जिसे हम दोहरे शासन का काल' कहते हैं। कम्पनी का शासन तो रहा ही; किन्तु ब्रिटिष संसद भी भारतीय प्रषासन सम्बन्धी मामलों में अधिकाधिक रूचि लेने लगी। 1857 की क्रान्ति ने एक जबरदस्त परिवर्तन का

आधार तैयार कर दिया और 1858 से भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिष शासन की शुरूआत हो गयी। भारत सरकार का संचालन कम्पनी से क्राउन के हाथ में आ गया। सन् 1947 तक भारत का शासन ब्रिटिष क्राउन के द्वारा चलाया गया। भारत में ब्रिटिष शासन मोटे तौर पर एक जिला आधारित प्रषासन रहा। जिसमें प्रतिष्ठा और (वही पृ:11) पद सोपान, वेतन स्तर आदि के भारी भेद–भावों के साथ–साथ केन्द्रीय प्रषासन और राज्य स्तरीय प्रषासनों के लिए दो भिन्न–भिन्न दिषाएं उभरीं। राजस्व और विधि व्यवस्था इस प्रषासन के मूल आधार रहे हैं। (वही : पृ:12)

❖ **न्याय प्रषासन** :–

ब्रिटिष शासन में न्याय व्यवस्था अच्छी थी। न्याय का कार्य संघीय न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधिनस्थ न्यायालयों के हाथों में था। सन् 1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीष तथा सरकार द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीष होते थे। न्यायालय के क्षेत्र में प्रारम्भिक एवं अपीलीय तथा परामर्ष सम्बन्धी विषय थे। प्रान्तों में उच्च न्यायालय का गठन सन 1861 के भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत किया गया था। इन न्यायालयों में दिवानी, अपराधिक, वसीयती, गैर–वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपील दोनों प्रकार के प्राप्त थे। जिलों में अधिनस्थ न्यायालय थे। ये न्यायालय दो प्रकार के थे : अधीनस्थ्य दिवानी न्यायालय और अधीनस्थ्य आपराधिक न्यायालय (वही, पृ:14)

❖ **स्वातन्त्रयोत्तर प्रषासन (Post-Independence Administration)** :–

स्वन्त्रता के बाद भारतीय प्रषासन के स्वरूप में आमूल चूल परिवर्तन आया है। 26 जनवरी, 1950 के बाद भारत में लोकतंत्र, विकास और समाजवाद के लिए प्रषासन युग की शुरूआत हुई है। इसके परिणामस्वरूप भारतीय प्रषासन को नये और विषिष्ट महत्व के कार्यों के सम्पादन की चुनौती स्वीकार करनी पड़ी 26 नवम्बर 1949 को संविधान निर्माती सभा ने भारत के संविधान को अंगीकृत किया। जो प्रषासन औपनिवेषिक शोषण और दमन का यंत्र था वह अब सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणतंत्र का सेवक बन गया। सम्प्रभु लोकत्रान्त्रिक गणतन्त्र की मूर्तिमान संस्था का रूप संसद न ग्रहण किया जो व्यस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन से गठित की गई। लोक प्रषासन को संसद के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया।

लोक प्रषासन का उद्देष्य संविधान की प्रस्तावना में उल्लेखित लक्ष्यों'' ..... उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विष्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए .....'' हो गया। ब्रिटिष राज में जहाँ प्रषासन पुलिस राज्य का यन्त्र था वह अब जनकल्याणकारी राज्य का उपकरण हो गया। राज्य के नीति के निर्देषक सिद्धान्तों में कहा गया है कि ''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक प्रभावी रूप से स्थापना और संरक्षण करके लोक–कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।'' (अनुच्छेछ 38 : भारत का संविधान) दिसम्बर, 1954 में संसद ने समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया और अब प्रषासन समाजवादी समाज की स्थापना करने वाला उपकरण बन गया। (वही : पृ : 20) अब प्रषासन का कार्य–पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराना, धन और उत्पादन का अहितकारी संकेन्द्रन रोकना, ग्राम–पंचायतों का संगठन करना, सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से दुर्बल वर्गों की रक्षा करना, प्रषासन कानून और व्यवस्था मात्र स्थापित करने वाला उपकरण नहीं है अपितु जन–कल्याण और आर्थिक विकास का अभिकर्त्ता है।

विभिन्न पंचवर्षीय विकास योजनाओं के क्रियान्वयन का दायित्व प्रषासन के कन्धों पर डालकर उसे अपने मालिकों के सामाजिक–आर्थिक विकास का वाहक बना दिया गया है। अब लोक प्रषासन आर्थिक एवं औधोगिक गतिविधियों में भाग लेने लगा; ग्रामीण विकास और गांवों में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की गति को तीव्र करने का उत्तरदायित्व लोक प्रषासन पर ही डाला गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया तथा विस्तार सेवाओं के माध्यम से गांवों में जागृति लाने का कार्य लोक प्रषासन को ही करना था। पंचायती राज की स्थापना से अधिकारियों का निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ–साथ काम करने की आदत विकसित करनी पड़ी। इसके साथ–साथ, सहकारिता, ग्रामीण विकास, सामाजिक अधिकारिता एवं न्याय मंत्रालय, परिवार कल्याण विभाग की स्थापना की गयी। सरकार में सूचना प्रौधोगिकी का उपयोग करके प्रषासनिक कार्यकुषलता में सुधार लाने के विषिष्ट उदेष्य से मंत्रिमण्डल सचिव की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया गया। सूचना प्रौधोगिकी धीरे–धीरे केन्द्रीय सरकार की कार्य प्रणाली में व्याप्त हो जाने के साथ ही सूचना प्रौधोगिकी के प्रबंधकों की सहायता से ई–गवर्नेंस के लिए एक न्यूनतम एजेण्डा तैयार किया गया। जिन मंत्रालयों/विभागों द्वारा लोगों को सेवाएं उपलबध करायी जाती है, उन्हें नागरिक चार्टर तैयार करने के लिए उत्प्रेरित किया गया है। अभी तक 30 केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों द्वारा 131 नागरिक चार्टर तैयार कर लिए गए हैं। इन चार्टरों में संगठन की बचनबद्धता, सेवा डिलीवरी के प्रत्यषित मानक, समय–सीमा, षिकायत निवारण तंत्र, कार्य निष्पादन को जनता की जांच पड़ताल के लिए उपलबध कराने और जबावदेयिता को सुनिषिचित किए जाने से सम्बन्धित तथ्यों का उल्लेख किया जाता है। पंचायती राज निकायों और नगरपालिकाओं को शक्ति सौंपने सम्बन्धी कार्यवाही पंचायती राज मंत्रालय और शहरी विकास मंत्रालय द्वारा की जा रही है। लोक प्रषासन को पारदर्षी बनाने हेतु नागरिकों को सूचना पाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है। 15 जून, 2005 को भारत के राष्ट्रपति ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 पर अपने हस्ताक्षर कर स्वीकृति प्रदान की गई। उत्तरदायी और जबावदेय (Responsive and Accountable) प्रषासन की स्थापना हेतु कदम उठाए जा रहे हैं। लोक सेवाओं को गुणवता सुधार ने तथा उन्हें पहले की अपेक्षा उपभोक्ताओं के अधिक अनुकूल बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। देष में ई–गवर्नेंस को कानूनी मान्यता देने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (I.T.Act) को 18 अक्टूबर 2000 से लागू कर दिया गया है। (वही पृ:21)

❖ **भारत में वर्ण, जाति एवं दलित :–**

दुनिया में किसी भी समाज, व्यवस्था और धर्म का निर्माण किसी भी ईष्वर, अल्लाह या गॉड ने नहीं किया है, इससे साफ जाहिर होता है कि जाति को भी ईष्वर ने नहीं बनाया है, दुनियां की सभी व्यवसथाओं को मनुष्य ने बनाया है, यानि जाति की व्यवस्था को भी मनुष्य ने बनाया है, भारत में जाति की उत्पति आर्यों के आगमन के बाद हुई, प्रत्येक कार्य और व्यवस्था के पीछे एक कारण और सम्बन्ध होता है, ऐसा ही संबंध जाति और उसकी व्यवस्था के पीछे है। (दलित दस्तक : नवम्बर 2016 पृ:8) मनु नाम के आर्य ने 'मनुस्मृति' नामक एक सामाजिक विधान की रचना की इस विधान में वर्ण व्यवस्था की श्रेणीबद्धता को बनाए रखते हुए एककदम और आगे बढ़कर वर्ण में जाति और गोत्रों की व्यवस्था बनाई, यानि मनु के वर्ण के अन्दर अनेक जातियाँ बनाई और गोत्र के आधार पर उनमें उच्च से निम्न का पदानुक्रम निर्धारित किया गया, जिससे जातियों के भीतर उच्च और निम्न की भावना का जन्म हुआ, मनु ने यह बताया की चार वर्णों में से किसी भी वर्ण कि कोई भी जाति अपने से नीचे वर्ण की जाति में कोई रक्त संबंध यानि शादी विवाह नहीं करेंगे अन्यथा वह अपवित्र और अषुद्ध हो जायेगा, सिर्फ समान वर्ण वाले ही आपस में रोटी–बेटी का रिष्ता कर सकता था इस तरह ब्राह्मणों का आपस में एकता बनी रही यही नियम क्षत्रिय वर्ण में भी लागू रखा गया, जिससे क्षत्रिय भी एकजूट रहें, वैष्य, शुद्र और अछूत में यह नियम लागू नहीं हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि ये आपस में एकजूट नहीं हो सके और ऊँच–नीच की भावना के कारण विखरते रहे।

ऋग्वैदिक वर्ण व्यवस्था में मनु ने गुलाम बनायें रखने के लिए वर्ण व्यवस्था को जाति व्यवस्था में बदल दिया इस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आर्यों ने समय–समय पर झूठे और आधारहीन धर्मषास्त्र लिखे, आर्य भारत में मुगलों के आने के बाद अपने आपको हिन्दू कहने लगे थे ताकि इससे उनका भारतीय मूल निवासी होने का बोध हो, इस तरह भारत में जाति पैदा करने का श्रेय वर्तमान हिन्दूओं के पुरखों को जाता है मनु की जाति व्यवस्था में जातियों की जनक्षमता इतनी अधिक है कि आज जातियों की संख्या हजारों में पहूँच गई और जाति का यह रोग भारत की सीमाएं लाँघकर अमेरिका और ब्रिटेन तक पहुँच गया है। (वही, पृ : 09)

आज ज्यादातर दलित साहित्य के रचनाकार और चिंतक मार्क्सवादी सौन्दर्यषास्त्र को दलित सौन्दर्यषास्त्र कह रहे हैं। वे भूल गए हैं कि अंबेडकर ने न मार्क्सवाद के सर्वहारा दर्षन के वर्गवाद को स्वीकार किया था न गांधी–लोहिया के वर्णवाद –स्वर्णवाद को। अंबेडकर मुड़कर बोद्ध चिंतन की ओर गए और नारायण गुरू, ज्योतिबा फूले, रामास्वामी परियार से प्रेरित–प्रभावित हुए। फ्रांसीसी राज्यक्रांति के समानता–बुधुता–स्वतंत्रता के विचार दर्षन से प्रभावित अंबेडकर ने भारत के जाति प्रथा, वर्ग व्यवसथा से उपजी दलित समस्या, दलित यातना पर अपने ढ़ंग से मौलिक चिंतन किया। इस मौलिक चिंतन का यथार्थ भारतीय राजनीति के दो नायकों, खलनायकों से बचाव रखता है। हिंदू नायक गांधी और मुस्लिम नायक जिन्ना से। क्यों रखते हैं? दोनों नायकों से परहेज वे इनकी राजनीति में दलितों का अधंकार युग पाते हैं। इसलिए अंबेडकर के भारतीय समाज चिंतन में भारतीय इतिहास और संस्कृति के नए सिरे से इंटरप्रिटेषंष की प्रमुखता पाते हैं। अंबेडकर ने शोध का विषय बनाया या चुना भारत में जाति–प्रथा संरचना, उत्पति और विकास। यह अंबेडकर का चिंतन ऐसा ऐतिहासिक (डॉ. अंबेडकरःअस्वीकार का साहस पृ : 271) दस्तावेज है जो हमारी पीढ़ी की आँखें खोल देता है। हम पाते हैं कि दलित चिंतन एक जटिल विषय है जिसमें वेदों से लेकर आज तक के जाति का रहस्य छिपा हुआ है। जाति जैसी संस्था की जटिलताओं से जुड़ा प्रष्न है – दलित साहित्य चिंतन का प्रष्न। इसके सैद्धान्तिक पक्ष का इन्द्रजाल जाति–समस्या से नाभि–नाल संबंध रखता है। भारतीय समाज आर्यों, द्रविड़ों, मंगोलों और शकों–हूणों का सम्मिश्रण है। ये जातियाँ अपनी मूल सांस्कृतिक विरासत के साथ इस देष में बस गई। ''इसी आधार पर मेरा कहना है कि इस प्रायद्वीप को छोड़कर संसार को कोई देष ऐसा नहीं है, जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो, हम केवल भूगौलिक दृष्टि से हीं सुगठित नहीं हैं, बल्कि हमारी सुनिष्चित सांस्कृतिक एकता भी अविच्छिन्न और अटूट है, जो पूरे देष में चारों दिषाओं में व्याप्त है। इसी सांस्कृतिक एकरूपता के कारण जाति–प्रथा इतनी विकराल समस्या बन गई है कि उसकी व्याख्या करना कठिन कार्य है।'' (बाबा साहेब डॉ० अंबेडकर, सम्पूर्ण वाड.मय, भाग–एक–पृ0 18) हमारा समाज केवल मिश्रण या वित्तीय समाज पर नहीं है, यहाँ तो सजातीय समाज में भी जाति प्रथा घुसी हुई है। जाति, वर्ण, धर्म, लिंग की व्याख्या के साथ इसके संक्रमण के 'पाठ' की पढ़त कठिन समस्या है। संस्कृति–सभ्यता–परम्परा, इतिहास, दर्षन और वैचारिकता इन सभी के बीच गहरा संबंध है अैर यह संबंध साहित्य और साहित्य सिद्धान्त दोनों से सरोकार रखता है। संस्कृति चित की खेती–बाड़ी है तो धर्म दीर्घकालीन राजनीति और साहित्य जनता की चितवृतियों क अभिव्यक्ति। भारतीय समाज धर्म जाति–वर्ण–लिंग के कीचड़ में धँसा गतिहीन, थमा, अलोकतांत्रिक समाज है। कदम–कदम पर धर्म, दर्षन, संविधान, न्याय–व्यवस्था, नारी सम्मान की व्यवस्था को धूल में ध्वस्त करता समाज। धर्म दर्षन, परम्परा, देवता, पूजा, भक्ति आस्था के नाम पर नंगा नाच। इस पूरे नंगा नाच का साहित्यिक पाठ 'कौन पढ़ेगा?' यहाँ अभी तक ऐसा कोई मिषेल फूको या पालडीमान नहीं है–जो दलित–यातना के दमन के पीछे की 'थियरी' को ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भों में भाषित–परिभाषित करे। (वही, पृ : 272)

❖ **पंचायती राज संस्थाओं का गठन, कार्य तथा प्रचलन :–**

1992 में संविधान में 73वाँ संषोधन हो जाने के उपरान्त भारत के लगभग सभी राज्यों ने अपने–अपने कानूनों में संषोधन कर अपने ग्रामीण स्थानीय स्वषासन संस्थाओं को उसके अनुरूप बनाने का प्रयास किया। नागालैण्ड और मेघालय को छोड़कर सभी राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना हो गई है। उनके संगठन का स्वरूप, कार्य, आय के स्त्रोत स्वायत्तता की सीमायें बहुत अन्तर है, वह परिस्थितियों के प्रभाव के कारण है। गोवा, जम्मू कष्मीर, मणीपुर, मिजोरम, मेघालय नागालैण्ड तथा सिक्किम में पंचायती संस्था दो स्तरीय है एक ग्राम स्तर पर और दूसरा जिला स्तर पर। जम्मू व कष्मीर में दुसरा स्तर जिला न होकर ब्लॉक है। शेष सभी राज्यों में तीन स्तरीय पंचायती राज है–प्रथम स्तर–ग्राम, दूसरा स्तर मण्डल या अंचल या तालूका या ब्लॉक या जनपद या यूनियन या क्षेत्र है; और तीसरा स्तर जिला या डिस्ट्रक्ट (district) है। (लोक प्रषासन,सिद्धान्त एवं व्यवहार सं0–1000)

❖ **ग्राम स्तर (Village Level) :–**

पंचायती राज संस्थाओं की मूल इकाई ग्राम है। प्रायः यह एक राजस्व इकाई है हाँ एक ग्राम हो सकता है या ग्राम का भाग हो या ग्राम का समूह भी हो सकता है। इस स्तर पर स्थानीय प्रषासन की इकाई को ग्राम पंचायत कहते हैं।

❖ **ग्राम सभा (Gram Sabha) :–**

अरूणाचल प्रदेष तथा जम्मू व कष्मीर को छोड़कर शेष सभी राज्यों में ग्रामीण स्तरीय स्थानीय प्रषासन में ग्राम सभा और इसकी कार्यकारी समिति जिसे ग्राम पंचायत कहते हैं। ग्राम सभा को गाँव सभा अथवा ग्राम पंचायत सभा भी कहते हैं। ग्राम सभा के क्षेत्र में सभी मतदाता इसके सदस्य होते हैं। ग्राम सभा के लिए अनिवार्य है कि वर्ष में कम से कम दो बैठक आवष्य करें। परन्तु बिहार में यह प्रावधान है कि ग्राम सभा के बैठकों के बीच का अन्तर चार महीने से अधिक नहीं होना चाहिए मध्य प्रदेष और त्रिपुरा में वर्ष में एक बैठक अनिवार्य है, जबकि तमिलनाडू में वर्ष में कम–से–कम तीन बैठक आवष्य होनी चाहिए (वही पृ : 1000–01)

❖ **ग्राम पंचायत (Gram Panchayat) :–**

यह ग्राम स्तर पर कार्य करने वाली ग्राम सभा की कार्यकारी समिति है। अधिकतर राज्यों में इसे ग्रा पंचायत कहा जाता है। असम में इसे गाँव पंचायत कहते हैं। गोवा, गुजरात, जम्मू व कष्मीर, केरल तथा तमिलनाडु में इसे विलिज (**Village**) पंचायत कहा जाता है। इसका नाम जो कुछ भी, यह ग्राम की प्रबन्धक संस्था है जो पाँच वर्षों के लिये ग्राम में मतदाता सूची में सम्मिलित नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से चुनी जाती है। परन्तु राज्य सरकार को यह अधिकार है कि वह विषेष परिस्थितियों में 5 वर्ष से पूर्व ही ग्राम पंचायत को भंग कर (वही , पृः1001) सकती है। ऐसी स्थिति में यह व्यवस्था की गई है कि नई पंचायत के चुनाव एक निर्षिचित अवधि के भीतर कराने अनिवार्य है जो प्रायः 6ः छ महीने है। इन चुनावों का प्रबंध राज्य चुनाव आयोग करता है। (वही, पृः1002)

❖ **प्रषासनिक कार्मिक (Administrative Personnel) :–**

ग्राम पंचायतों के प्रषासनिक कर्मियों का विस्तृत उल्लेख राज्यों द्वारा पारित कानूनों में अधिक नहीं मिलता। सभी राज्यों में यह व्यवस्था है कि एक पंचायत का या कुछ पंचायतों का सामूहिक एक सचिव होगा जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार करती हैं। इसकी नियुक्ति का तरीका (वही :पृः1004)

राज्य सरकार निर्धारित करती है। परन्तु सिक्किम में ग्राम पंचायत अपने हीं सदस्यों में से एक सचिव का चुनाव करती है। प्रायः वह एक ऐसा अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार एक पंचायत या पंचायतों के समूह के लिए करती है।

❖ **न्याय पंचायतें/पंचायतों के न्यायिक कार्य (Naya Panchayats/Judicial Functions of Panchayats)** :–

बिहार जम्मू व कष्मीर, महाराष्ट्र, उत्तर–प्रदेष तथा पष्चिम बंगाल में ग्राम अथवा कुछ ग्रामों के समूहों स्तर भिन्न पंचायतों की स्थापित की गई है। जो छोटे अपराधों तथा दीवानी झगड़ों पर निर्णय देती है। इनको न्याय पंचायत कहा जाता है। बिहार में इनको ग्राम कचहरी कहते है और जम्मू व कष्मीर में पंचायती अदालत कहलाती है। परन्तु न्याय पंचायतों के गठन के सम्बन्ध में राज्यों में एकरूपता नहीं है।

बिहार में ग्राम कचहरी के सरपंच का चुनाव के क्षेत्र में मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है परन्तु उप सरपंच का चुनाव निर्वाचित पंचों के बीच में से हीं किया जाता है। जम्मू व कष्मीर में ग्राम पंचायत के सदस्यों (वही, पृः1005) का निर्वाचन करते हैं। महाराष्ट्र में पाँच ग्रामों के समूह के लिए एक न्याय पंचायत का गठन होता है, प्रत्येक पंचायत ग्राम सभा के सदस्यों में से किसी एक को न्याय पंचायत का सदस्य चुनकर भेजते है। उत्तर–प्रदेष में न्याय पंचायतों के सदस्यों की नियुक्ति सरकार द्वारा निष्चित किये गये अधिकारी द्वारा ग्राम पंचायत के सदस्यों में से ही की जाती है वे अपने में से ही एक सरपंच तथा उप सरपंच का चुनाव करते हैं। पष्चिम बंगाल में ग्राम पंचायत के सदस्य ग्राम क्षेत्र के मतदाताओं में से न्याय पंचायत के सदस्यों का चुनाव करते हैं।

सभी न्याय पंचायतों की पद अवधि पाँच वर्ष होती है और किसी भी न्याय पंचायत के सम्मुख किसी वकील को पेष होने की अनुमति नहीं है। न्याय पंचायतें दिवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार के क्षेत्रा अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं।

❖ **बिहार** :–

ग्राम कचहरी की पीठ में सरपंच तथा दो पंच होते हैं ; उनको अधिकार है कि वे किसी मामले या मुकदमे की छानबीन कर सकते हैं। गवाहों को बुला सकते हैं; किसी दस्तावेज को पेष करने के लिए कह सकते हैं; पीठ के लिये प्रत्यक्ष प्रमाण (**Evidence**) के नियमों का अनुकरण करना जरूरी नहीं, इसका फौजदारी क्षेत्राधिकार कुछ ऐसे अपराधों तक है जो भारतीय दण्ड संहिता, बंगाल लोक जुआबाजी, अधिनियम तथा पषु अतिक्रमण अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं। यह तीन महीने की सरल कैद तथा एक हजार रूपये तक का जुर्माने का आदेष दे सकते हैं। यदि शांति और व्यवस्था का कोई तत्काल खतरा है, तो सरपंच तुरन्त कार्यवाही कर सकता है। इसके निर्णय के विरूद्ध अपील कचहरी की पूरी पीठ के समक्ष पेष की जा सकती है। पीठ का पहला प्रयास दोनों के बीच शांति करवाना होता है और पंचायत की प्रषासनिक भूमिका के रूप में निहित है। (वही पृः 1006)

❖ **निष्कर्ष** :–

निष्कर्षतः उपरोक्त बिन्दुओं पर चर्चा करते हुए कहा जा सकता है कि भारत की प्राचीन इतिहासिक प्रषासनिक व्यवस्था कई काल क्रमों से गुजरी है जिसमें ग्रामीण जनता के प्रति प्रषासन की भूमिका का पर्याप्त वर्णन मिलता है। जहाँ तक पंचायतों की सामाजिक, न्यायिक और प्रषासनिक, व्यवस्था पर विचार के साथ–साथ, सरकार की निर्मित संस्थाओं पर ध्यान आकृष्ट किया जाये तो पता चलता है कि सरकार द्वारा निर्मित शासन व्यवस्था में कई तरह की खामियाँ पाई गई है, जिसे सामाजिक न्याय के सर्वमान्य महापुरूष, संविधान निर्माता डॉ० बाबा साह अम्बेडकर के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''मानसिक पराधीनता को राजनीतिक गुलामी से भी अधिक घातक

मानते थे। उनके विचार से पिछड़े समाज की समस्या सिर्फ रोटी, कपड़ा और मकान की नहीं है। उसकी समस्या सामाजिक परिस्थितियों के कारण मन में बैठ गई हीन भावना भी है। इस हीन भावना की वजह से उसका विकास अवरूद्ध हो गया है। उच्च षिक्षा का प्रसार किए बिना उसे इस हीन भावना से उबारा नहीं जा सकता। बाबा साहब का अटूट विष्वास था कि षिक्षा ही मनुष्य और समाज के जीवन में बदलाव ला सकती है। औपनिवेषिक शासन से आजादी के समय देष में षिक्षा की स्थिति बेहद दयनीय थी। स्वतंत्र भारत में पहली बार 1951 में हुई जनगणना के आँकड़ों के अनुसार उस समय देष में साक्षरता दर सिर्फ 18.32 प्रतिषत थी। कुल 27.15 प्रतिषत पुरूषों की तुलना में सिर्फ 8.86 प्रतिषत महिलाएँ पढ़'–लिख सकती थीं। शहरों में सिर्फ 45.6 प्रतिषत पुरूष और 22.33 प्रतिषत महिलाएँ साक्षर थी। लेकिन गाँवों में हालात बेहद निराषाजनक थी जहाँ महज 19.02 प्रतिषत पुरूष और 4.87 प्रतिषत महिलाएँ हीं साक्षर थीं।

देष आजाद होने के बाद हमारे नेताओं ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलावों के औजार के तौर पर षिक्षा की अहमियत को समझा। उन्होंने महसूस किया कि देष के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए आवाम का षिक्षित तथा ज्ञान और दक्षता से लैस होना महत्वपूर्ण है। षिक्षा के प्रचार के जरिये ही समानता और न्याय पर आधारित समाज बनाया जा सकता है। षिक्षा से सिर्फ आर्थिक बेहतरी ही नहीं आती बल्कि यह नागरिकों को शासन की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए तैयार कर लोकतंत्र को भी मजबूत करती है । यह सामाजिक एकता और राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने वाले मूल्यों को बढ़ावा देकर देष की अखंडता की हिफाजत में मददगार साबित होती है। जहाँ तक ''सामाजिक न्याय में पंचायती राज संस्थाओं की प्रषासनिक भूमिका'' की बात आती है तो उपर्युक्त बिन्दु इसके परिपेक्ष में सटिक साबित होती है जिसे लागू किया जाय ताकि देष की पंचायती राज संस्थाओं में शस्कत प्रषासनिक व्यवस्था को कायम किया जा सके, लागू किया जा सके यह हमारी विचारधारायें समाहित अग्रेतर होती है। (कुरूक्षेत्र, दिसम्बर, पृः 19,21)

सन्दर्भ सूची :–

1. फड़िया, डॉ० बी. एलः कुलदीप ; प्रकाषक : साहित्य भवन, 14वां संस्करण आगरा (उ. प्र) पृ : 1
2. वही : पृ; 2
3. वही : पृ; 3
4. वही : पृ; 4
5. वही : पृ; 5
6. वही : पृ; 6
7. वही : पृ; 7
8. वही : पृ; 9
9. वही : पृ; 11
10. वही : पृ; 12
11. वही : पृ; 14
12. वही : पृ; 20
13. वही : पृ; 21
14. दलित दस्तक, वर्ष :5, अंक, 06 नवम्बर, 2016, पृ : 8–9
15. पालीवाल कृष्णदत, डॉ० अंबेडकर अस्वीकार का साहस, प्रकाषन : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाषन नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृः 271

16. वही, पृ; 272
17. कौर हरप्रीत, सदाना, बी. एल, शर्मा, एम. पी. :लोक प्रषासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, प्रकाषक : किताब महल, इलाहाबाद, तैतीसवाँ संस्करण : 2013, पृ : 1000
18. वही, पृ : 1001, 02
19. वही, पृ : 1004, 05
20. वही, पृ : 1006
21. वर्ष 62, अंक : 02, दिसम्बर 2015 : कुरूक्षेत्र : प्रकाषक, प्रकाषन, विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ : 19, 21